ZENITH EDUCATION

UPTGT · Hindi • हिन्दी साहित्य

A01 : Hindi Sahitya Itihas Lekhan (Historiography of Hindi Literature)

हिन्दी साहित्य · Definitive Reference Manual · Hindi Medium

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन

परिचय

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन (Historiography of Hindi Literature) का अर्थ है — हिन्दी साहित्य के विकास-क्रम को एक व्यवस्थित, कालानुक्रमिक और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करने की परम्परा। यह केवल रचनाओं की सूची नहीं, बल्कि यह बताने की कला है कि हिन्दी साहित्य किन-किन चरणों से गुज़रा, किन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों ने उसे प्रभावित किया, और किस आधार पर उसका काल-विभाजन किया गया। इस विधा का अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह हमें साहित्य के स्वरूप को समझने का ढाँचा देता है — जैसे किसी मानचित्र के बिना यात्रा अधूरी होती है, उसी प्रकार इतिहास-दृष्टि के बिना साहित्य-अध्ययन अधूरा है।

शब्द-व्युत्पत्ति एवं मूल अर्थ

इतिहास शब्द संस्कृत के "इति + ह + आस" से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है — "यह निश्चय ही ऐसा हुआ था" (इति = इस प्रकार, ह = निश्चय ही, आस = था)। इस प्रकार इतिहास केवल घटनाओं का विवरण नहीं, बल्कि सत्य-निर्धारण की प्रक्रिया है। **साहित्येतिहास** का अर्थ है — साहित्य की उन घटनाओं, प्रवृत्तियों और रचनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन जो किसी भाषा के विकास को दर्शाती हैं। हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में यह मान्यता निहित है कि साहित्य समाज का दर्पण है — जैसे-जैसे समाज बदलता है, साहित्य का रूप और भाव भी बदलते हैं।

परिभाषा-कोश (Definition Bank)

1. **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** के अनुसार — "साहित्य का इतिहास केवल रचनाओं की सूची नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों का विवेचन है जिनमें रचनाएँ जन्म लेती हैं और जिन प्रवृत्तियों का वे प्रतिनिधित्व करती हैं।"

2. **डॉ. नगेन्द्र** के अनुसार — "साहित्येतिहास वह विधा है जो साहित्यिक कृतियों को उनके सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ में रखकर उनके विकास-क्रम का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है।"

3. **डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी** के अनुसार — "साहित्य का इतिहास भाषा और समाज के सह-विकास की कथा है; यह बताता है कि किस प्रकार भाषा में विचारों का प्रवाह होता रहा।"

4. **डॉ. नामवर सिंह** के अनुसार — "इतिहास-लेखन केवल अतीत का ब्योरा नहीं, वर्तमान की दृष्टि से अतीत का पुनर्निर्माण है।"

5. **विजयेन्द्र स्नातक** के अनुसार — "साहित्येतिहास वह शास्त्र है जो साहित्यिक कृतियों के काल-निर्धारण, प्रवृत्ति-विश्लेषण और मूल्यांकन का व्यवस्थित विज्ञान प्रस्तुत करता है।"

सीधे शब्दों में — साहित्येतिहास लेखन वह अनुशासन है जो हमें बताता है कि हिन्दी साहित्य कब, कहाँ, किन परिस्थितियों में, किन प्रवृत्तियों के साथ विकसित हुआ, और इसे किस आधार पर विभिन्न कालों में बाँटा गया।

ऐतिहासिक विकास (Historical Evolution)

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा अपेक्षाकृत नई है। इसका विकास निम्न चरणों में हुआ:

प्रथम चरण (19वीं शताब्दी का उत्तरार्ध): इस विधा का प्रारम्भ **फ्रेडरिक पिन्कॉट** (Frederic Pincott) के लेख "The Hindi Language and Literature" (1880) से माना जाता है। यह लेख **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद **जॉर्ज ग्रियर्सन** (George Grierson) का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा — उन्होंने **"The Modern Vernacular Literature of Hindustan"** (1889) नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य को काल-खण्डों में विभाजित करने का प्रथम प्रयास किया। ग्रियर्सन ने हिन्दी साहित्य को चार कालों में बाँटा — प्रारम्भिक काल (1000-1400 ई.), मध्य काल (1400-1650 ई.), उत्तर-मध्य काल (1650-1800 ई.) और आधुनिक काल (1800 ई. से आगे)।

द्वितीय चरण (20वीं शताब्दी का प्रारम्भ): मिश्रबन्धु (गणेशबिहारी मिश्र, श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र) ने **"मिश्रबन्धु विनोद"** (1913) नामक चार खण्डों में विशाल ग्रन्थ लिखा। इसमें उन्होंने कवियों की जीवनी, रचनाओं की सूची और काल-विभाजन प्रस्तुत किया। यद्यपि इसमें तथ्यात्मक अशुद्धियाँ हैं, फिर भी यह हिन्दी साहित्येतिहास की दिशा में एक बड़ा कदम था।

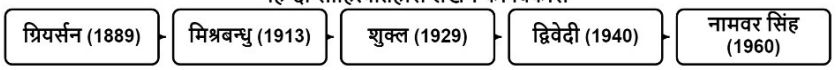
तृतीय चरण (1920-1940): इस काल में **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** का युग आया। उन्होंने **"हिन्दी साहित्य का इतिहास"** (1929) लिखा, जिसे इस विधा का सर्वाधिक प्रामाणिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ माना जाता है। शुक्ल जी ने सर्वप्रथम साहित्य को समाज और संस्कृति से जोड़कर देखा। उन्होंने हिन्दी साहित्य को चार कालों में विभाजित किया — वीरगाथा काल (993-1318 ई.), भक्तिकाल (1318-1643 ई.), रीतिकाल (1643-1843 ई.) और आधुनिक काल (1843 ई. से आगे)। शुक्ल जी का यह काल-विभाजन आज भी सर्वाधिक स्वीकृत है।

चतुर्थ चरण (1940-1960): इस काल में **डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने **"हिन्दी साहित्य की भूमिका"** (1940) तथा **"हिन्दी साहित्य का आदिकाल"** (1952) लिखकर इतिहास-लेखन में नई दृष्टि दी। द्विवेदी जी ने शुक्ल जी के "वीरगाथा काल" के स्थान पर "आदिकाल" नाम पर बल दिया और सिद्ध साहित्य को हिन्दी की प्रथम रचना माना। उन्होंने इतिहास-लेखन में सांस्कृतिक दृष्टि पर बल दिया।

पाँचवाँ चरण (1960 के बाद): डॉ. नामवर सिंह ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इतिहास-लेखन पर पुनर्विचार किया। उन्होंने "आदिकाल" को "आदिकाल"

कहने की बजाय "अंधकार युग" कहने का विरोध किया और उसे "वीरगाथा काल" के स्थान पर "आदिकाल" ही कहना उचित माना। इसके अतिरिक्त डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. बच्चन सिंह आदि ने भी इतिहास-लेखन में योगदान दिया।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का विकास



प्रमुख सिद्धान्त एवं विचारक

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण अपनाए हैं:

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मुख्य सिद्धान्त था — **"साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है"** (Literature is the reflection of society)। उन्होंने इतिहास-लेखन में "लोक-मंगल" की दृष्टि पर बल दिया। उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि लोक-कल्याण है। उन्होंने भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का "स्वर्ण युग" कहा, क्योंकि उसमें जन-जागरण और लोक-मंगल की भावना प्रबल थी। शुक्ल जी ने रीतिकाल को "कविता के कौशल का युग" कहकर उसकी आलोचना की, क्योंकि उसमें भावना की अपेक्षा शिल्प पर अधिक बल दिया गया।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का सिद्धान्त था — **"साहित्य संस्कृति की अभिव्यक्ति है"** (Literature is the expression of culture)। उन्होंने इतिहास-लेखन में "सांस्कृतिक दृष्टि" (Cultural perspective) पर बल दिया। द्विवेदी जी ने "वीरगाथा काल" के स्थान पर "आदिकाल" नाम का आग्रह किया और सिद्धों, नाथों, जैन कवियों की रचनाओं को हिन्दी साहित्य की प्रथम कड़ी माना। उनके अनुसार हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ लगभग 1000 ई. से माना जाना चाहिए, न कि 993 ई. से जैसा शुक्ल जी ने माना।

डॉ. नामवर सिंह का सिद्धान्त था — **"साहित्य का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है"** (History of literature is the history of class-struggle)। उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इतिहास-लेखन किया। नामवर सिंह ने "आदिकाल" को "अंधकार युग" कहने का विरोध किया और उसे "आदिकाल" ही कहना उचित माना। उन्होंने भक्तिकाल को दो धाराओं — निर्गुण और सगुण — में विभाजित करने की परम्परा पर पुनर्विचार करते हुए कहा कि यह विभाजन उतना स्पष्ट नहीं है जितना माना जाता है।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" (1986) लिखकर साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा। उन्होंने आदिकाल को "वीरकाल" के स्थान पर "आदिकाल" कहने पर बल दिया और साहित्य को जन-जीवन से जोड़कर देखा।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने **"हिन्दी साहित्य का इतिहास"** (1964) लिखा, जिसमें उन्होंने काल-विभाजन की नई योजना प्रस्तुत की। उन्होंने हिन्दी साहित्य को दो मुख्य भागों — पूर्व-मध्ययुग और उत्तर-मध्ययुग — में विभाजित किया।

प्रतिमान-तुलना (Paradigm Comparison)

विचारक	ग्रन्थ (वर्ष)	दृष्टिकोण	काल-विभाजन
ग्रियर्सन	Modern Vernacular Literature (1889)	भाषावैज्ञानिक	4 काल (1000 से आधुनिक तक)
मिश्रबन्धु	मिश्रबन्धु विनोद (1913)	जीवनी-प्रधान	कवियों की सूची के आधार पर
रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास (1929)	मनोवैज्ञानिक-सामाजिक	4 काल (वीरगाथा, भक्ति, रीति, आधुनिक)
हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य की भूमिका (1940)	सांस्कृतिक	वीरगाथा काल के स्थान पर आदिकाल नाम दिया
नामवर सिंह	इतिहास और आलोचना (1957)	मार्क्सवादी	शुक्ल के विभाजन पर पुनर्विचार
रामस्वरूप चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)	समाजशास्त्रीय	आदिकाल को वीरकाल न कहने पर बल

विश्लेषणात्मक ढाँचे एवं अनुप्रयोग

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में काल-विभाजन की विभिन्न योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं:

ग्रियर्सन का काल-विभाजन: ग्रियर्सन ने हिन्दी साहित्य को चार कालों में बाँटा — प्रारम्भिक काल (1000-1400 ई.), मध्य काल (1400-1650 ई.), उत्तर-मध्य काल (1650-1800 ई.) और आधुनिक काल (1800 ई. से आगे)। यह विभाजन मुख्यतः भाषा-वैज्ञानिक आधार पर था।

शुक्ल जी का काल-विभाजन: शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य को चार कालों में विभाजित किया — वीरगाथा काल (993-1318 ई.), भक्तिकाल (1318-1643 ई.), रीतिकाल (1643-1843 ई.) और आधुनिक काल (1843 ई. से आगे)। यह विभाजन मुख्यतः प्रवृत्ति-आधारित था। शुक्ल जी ने प्रत्येक काल की प्रमुख प्रवृत्ति के आधार पर नामकरण किया — वीरगाथा काल में वीर रस की प्रधानता, भक्तिकाल में भक्ति भावना, रीतिकाल में शृंगार और शिल्प-कौशल।

द्विवेदी जी का दृष्टिकोण: द्विवेदी जी ने काल-विभाजन की अपेक्षा सांस्कृतिक निरन्तरता पर बल दिया। उन्होंने शुक्ल जी के "वीरगाथा काल" नाम को अस्वीकार कर "आदिकाल" नाम को उचित ठहराया, क्योंकि इस काल में सिद्ध, नाथ, जैन आदि विविध धाराएँ थीं।

नामवर सिंह का दृष्टिकोण: नामवर सिंह ने शुक्ल जी के काल-विभाजन को मूल रूप से स्वीकारते हुए उसमें संशोधन किया। उन्होंने आदिकाल को "अंधकार युग"

कहने का विरोध किया और कहा कि यह काल अंधकार का नहीं, बल्कि नव-निर्माण का काल था।

काल-विभाजन की समस्या: हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सबसे बड़ी समस्या काल-विभाजन की है। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न आधारों पर काल-विभाजन किया है — कुछ ने भाषा के आधार पर, कुछ ने प्रवृत्तियों के आधार पर, कुछ ने राजनीतिक घटनाओं के आधार पर। इससे काल-सीमाओं में मतभेद उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, शुक्ल जी ने वीरगाथा काल का प्रारम्भ 993 ई. माना, जबकि द्विवेदी जी ने 1000 ई. से पहले की रचनाओं को भी हिन्दी साहित्य में शामिल किया।

आलोचना एवं सीमाएँ

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में अनेक कमियाँ भी बताई गई हैं:

प्रथम आलोचना: डॉ. नगेन्द्र ने कहा कि अधिकांश इतिहास-ग्रन्थ "कवि-क्रमिक" हैं — अर्थात् उनमें कवियों की सूची प्रस्तुत कर दी जाती है, परन्तु साहित्यिक प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं होता। उन्होंने इतिहास-लेखन में "साहित्यिक मूल्यों" (Literary values) के आधार पर मूल्यांकन पर बल दिया।

द्वितीय आलोचना: डॉ. बच्चन सिंह ने कहा कि शुक्ल जी का काल-विभाजन मुख्यतः उत्तर भारत के दृष्टिकोण से किया गया है, जिसमें दक्षिण भारत के हिन्दी साहित्य की उपेक्षा हुई है। उन्होंने "समग्र हिन्दी साहित्य" के इतिहास की आवश्यकता पर बल दिया।

तृतीय आलोचना: डॉ. नामवर सिंह ने शुक्ल जी की "लोक-मंगल" की अवधारणा की आलोचना करते हुए कहा कि यह अवधारणा अस्पष्ट है और इसे वर्ग-दृष्टि से स्पष्ट करने की आवश्यकता है। उन्होंने इतिहास-लेखन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया।

चतुर्थ आलोचना: डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने कहा कि अधिकांश इतिहास-ग्रन्थों में "पूर्व-मध्ययुग" और "उत्तर-मध्ययुग" का विभाजन अस्पष्ट है। उन्होंने काल-विभाजन की नई योजना प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य को दो मुख्य भागों में बाँटा।

प्रत्युत्तर: इन आलोचनाओं के बावजूद, शुक्ल जी का इतिहास-ग्रन्थ आज भी सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। उनकी "लोक-मंगल" की अवधारणा स्पष्ट है — उनके अनुसार वही साहित्य श्रेष्ठ है जो समाज के कल्याण में सहायक हो। यह अवधारणा आज के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक है।

बहुआयामी विश्लेषण

सामाजिक आयाम: हिन्दी साहित्येतिहास लेखन यह दर्शाता है कि साहित्य किस प्रकार समाज की आवश्यकताओं और समस्याओं से जुड़ा रहा है। भक्तिकाल में सामन्तवाद के विरुद्ध जन-जागरण की भावना थी, रीतिकाल में राजदरबारों की संस्कृति का प्रभाव था, और आधुनिक काल में राष्ट्रीय आन्दोलन की छाया स्पष्ट दिखाई देती है।

राजनीतिक आयाम: इतिहास-लेखन पर राजनीतिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ा है। उदाहरण के लिए, 1929 में जब शुक्ल जी ने अपना इतिहास लिखा, तब राष्ट्रीय आन्दोलन अपने चरम पर था — इसलिए उन्होंने साहित्य में राष्ट्रीय चेतना की खोज पर बल दिया। इसी प्रकार, 1960 के दशक में नामवर सिंह ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाया, जो उस समय के बौद्धिक वातावरण का प्रतिबिम्ब था।

सांस्कृतिक आयाम: द्विवेदी जी ने साहित्य को संस्कृति की अभिव्यक्ति मानकर इतिहास-लेखन में सांस्कृतिक दृष्टि का समावेश किया। उन्होंने दिखाया कि हिन्दी साहित्य केवल उत्तर भारत की देन नहीं, बल्कि पूरे भारतीय उपमहाद्वीप की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिफल है।

भाषिक आयाम: हिन्दी साहित्येतिहास लेखन भाषा-विकास की कथा भी है। आदिकाल की अपभ्रंश से लेकर आधुनिक काल की खड़ी बोली तक — भाषा का जो विकास-क्रम दिखाई देता है, वह इतिहास-लेखन का ही परिणाम है। ग्रियर्सन ने इसी भाषिक दृष्टि से इतिहास लिखा।

समसामयिक आयाम: वर्तमान समय में हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में नई चुनौतियाँ हैं — स्त्री-दृष्टि से इतिहास का पुनर्लेखन, दलित-दृष्टि से इतिहास का पुनर्मूल्यांकन, और क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल करने की माँग। इन चुनौतियों के बीच इतिहास-लेखन की परम्परा निरन्तर विकसित हो रही है।

अन्तःविषयी सम्बन्ध (Interdisciplinary Linkages)

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का सम्बन्ध अनेक विषयों से है:

इतिहास से: साहित्येतिहास राजनीतिक और सामाजिक इतिहास से गहरा जुड़ा है। जैसे-जैसे राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलती हैं, साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी बदलती हैं। उदाहरण के लिए, मुगल साम्राज्य के पतन के बाद रीतिकाल का उत्थान हुआ।

समाजशास्त्र से: साहित्य समाज का दर्पण है — यह मान्यता साहित्येतिहास को समाजशास्त्र से जोड़ती है। सामाजिक संरचना, वर्ग-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था — इन सबका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है।

भाषाविज्ञान से: भाषा के विकास-क्रम का अध्ययन साहित्येतिहास का आधार है। अपभ्रंश से हिन्दी तक का सफर भाषाविज्ञान की देन है।

दर्शन से: भक्तिकाल के दार्शनिक आधार — अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद — साहित्येतिहास की समझ के लिए आवश्यक हैं।

राजनीति विज्ञान से: राष्ट्रीय आन्दोलन, सामन्तवाद, औपनिवेशिक शासन — इन राजनीतिक घटनाओं का साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

समसामयिक प्रासंगिकता (2023-2025)

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्येतिहास लेखन नई दिशाओं में अग्रसर है। **स्त्रीवादी दृष्टिकोण** से इतिहास का पुनर्लेखन हो रहा है — जिसमें महिला कवियों और लेखिकाओं के योगदान को पुनः स्थापित किया जा रहा है। **दलित दृष्टिकोण** से इतिहास का पुनर्मूल्यांकन भी हो रहा है — जिसमें निम्न वर्गों के साहित्य को प्रमुखता दी जा रही है। **क्षेत्रीय भाषाओं** के साहित्य को हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल करने की माँग भी बलवती हो रही है। इसके अतिरिक्त, **डिजिटल माध्यमों** के विकास ने इतिहास-लेखन के नए आयाम खोले हैं — ऑनलाइन साहित्यिक पत्रिकाएँ, ब्लॉग, और सोशल मीडिया ने साहित्यिक अभिलेखन को नया रूप दिया है। इन परिवर्तनों के बीच, शुक्ल जी का इतिहास-ग्रन्थ आज भी प्रासंगिक है क्योंकि उसमें निहित "लोक-मंगल" की अवधारणा कालातीत है।

केस स्टडीज़

केस स्टडी 1 — आदिकाल का नामकरण विवाद: आदिकाल को क्या नाम दिया जाए — यह विवाद हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सबसे रोचक समस्या है। शुक्ल जी ने इसे "वीरगाथा काल" कहा, गुलेरी जी ने "अपभ्रंश काल" कहना उचित माना, द्विवेदी जी ने "आदिकाल" नाम को उचित माना, नामवर सिंह ने "आदिकाल" नाम को ही स्वीकार किया, और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने "आदिकाल" को ही उचित माना। यह विवाद दर्शाता है कि इतिहास-लेखन केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि दृष्टिकोण का प्रश्न है।

केस स्टडी 2 — भक्तिकाल का वर्गीकरण: भक्तिकाल को दो धाराओं — निर्गुण और सगुण — में विभाजित करने की परम्परा शुक्ल जी से चली। निर्गुण धारा में ज्ञानाश्रयी (कबीर) और प्रेमाश्रयी (जायसी) शाखाएँ हैं, जबकि सगुण धारा में कृष्ण-भक्ति (सूरदास) और राम-भक्ति (तुलसीदास) शाखाएँ हैं। नामवर सिंह ने इस विभाजन पर पुनर्विचार करते हुए कहा कि यह विभाजन उतना स्पष्ट नहीं है जितना माना जाता है — कबीर और जायसी में भी सगुण भक्ति के तत्व मिलते हैं, और सूरदास में भी निर्गुण भक्ति के तत्व।

Objective Exam Focus

Exam Fact Cluster:

• **ग्रियर्सन** का ग्रन्थ — "The Modern Vernacular Literature of Hindustan" (

आधुनिक इतिहास-लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ (Modern Historiographical Trends)

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन ने एक महत्वपूर्ण मोड़ लिया। आरंभिक इतिहासकारों (शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु, रामचंद्र शुक्ल) ने मुख्यतः **रचनाकार-केंद्रित** इतिहास लिखा — यानी कवियों और लेखकों की जीवनी, उनकी रचनाओं की सूची और काल-निर्धारण पर ज़ोर दिया। किंतु 1960 के बाद **विचार-केंद्रित** और **संस्कृति-केंद्रित** दृष्टिकोण उभरे, जिन्होंने साहित्य को समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था के व्यापक संदर्भ में देखना शुरू किया।

इस बदलाव के प्रमुख प्रवर्तक रहे नामवर सिंह। उनकी आलोचना-दृष्टि ने पारंपरिक इतिहास-लेखन की आधारशिलाओं को चुनौती दी। नामवर जी ने तर्क दिया कि साहित्य का इतिहास केवल रचनाओं की सूची नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का दस्तावेज़ है। उन्होंने जनवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा कि साहित्य का विकास जनता की चेतना के विकास के समानांतर चलता है। यही कारण है कि उन्होंने भक्तिकाल को जन-जागरण का काल कहा, न कि केवल धार्मिक भावुकता का।

इसी परंपरा में **बच्चन सिंह** का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने **"हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास"** (1996) नामक पुस्तक में **संवेदना-केंद्रित इतिहास-लेखन** की वकालत की। उनका मानना था कि साहित्यिक इतिहास को केवल शैलियों और विधाओं के विकास तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे **मानवीय संवेदना के उत्थान-पतन** की कथा कहनी चाहिए। उन्होंने **आदिकाल को "संधिकाल" कहने की परंपरा** को चुनौती देते हुए उसे **"लोक-चेतना का काल"** घोषित किया।

इसके अतिरिक्त, **कृष्णदेव शर्मा** और **रामविलास शर्मा** ने **मार्क्सवादी दृष्टिकोण** से इतिहास-लेखन को समृद्ध किया। रामविलास शर्मा की **"भारत के प्राचीन भाषा-परिवार और हिन्दी"** (1979) और **"हिन्दी भाषा का इतिहास"** (1975) ने भाषा-विज्ञान और साहित्यिक इतिहास को जोड़ा। उन्होंने सिद्ध किया कि हिन्दी का विकास **वर्ग-संघर्ष** और **श्रम-विभाजन** की प्रक्रियाओं से अलग नहीं किया जा सकता।

इतिहास-लेखन के विवादास्पद प्रश्न (Contested Questions in Historiography)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में कई ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विद्वानों में मतभेद आज तक बना हुआ है। इन विवादों को समझना परीक्षार्थी के लिए अनिवार्य है, क्योंकि ये प्रश्न बार-बार पूछे जाते हैं।

पहला विवाद: आदिकाल का नामकरण और समय-निर्धारण। रामचंद्र शुक्ल ने वि.सं. 1050 से 1375 (993-1318 ई.) तक के काल को "वीरगाथा काल" कहा। उनका तर्क था कि इस काल की रचनाओं में वीर-रस की प्रधानता है। किंतु हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस नामकरण को अस्वीकार करते हुए "आदिकाल" शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने तर्क दिया कि इस काल में केवल वीर-रस ही नहीं, बल्कि सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य और नाथ साहित्य जैसी विविध धाराएँ भी थीं। इसके बाद रामकुमार वर्मा ने "संधिकाल" शब्द का प्रस्ताव रखा, जिसके अनुसार यह काल संस्कृत के अवसान और हिन्दी के उदय के बीच का संधि-काल है।

दूसरा विवाद: भक्तिकाल की समय-सीमा। शुक्ल जी ने भक्तिकाल वि.सं. 1375 से 1700 (1318-1643 ई.) तक माना। भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति पर भी मतभेद है — क्या यह दक्षिण से उत्तर की ओर आया, या उत्तर में स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ?

तीसरा विवाद: रीतिकाल का नामकरण। शुक्ल जी ने वि.सं. 1700 से 1900 (1643-1843 ई.) तक के काल को "रीतिकाल" कहा, जिसमें रीति-ग्रंथों (काव्य-शास्त्र की पुस्तकों) की प्रधानता थी। किंतु मिश्रबंधुओं ने इस काल को "अलंकृत काल" कहा, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने "शृंगारकाल" नाम दिया, जबकि रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने "कलाकाल"। ये नामकरण-विवाद केवल शब्दों के खेल नहीं हैं, बल्कि इस काल की प्रकृति को समझने के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं।

इतिहास-लेखन की पद्धतियाँ (Methodologies of Historiography)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में मुख्यतः चार पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। इन्हें समझना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि परीक्षा में **मिलान-प्रश्न** (match-the-following) और **कथन-कारण** (assertion-reason) प्रारूपों में ये पूछे जाते हैं।

पहली पद्धति: अनुक्रमिक (Chronological) पद्धति। इसमें रचनाओं और रचनाकारों को काल-क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। शिवसिंह सेंगर की **"शिवसिंह सरोज"** (1878) इसी पद्धति का उदाहरण है। इसमें 1000 से अधिक कवियों की सूची काल-क्रम में दी गई है। यह पद्धति सरल है, किंतु इसमें साहित्यिक विकास की **आंतरिक गति** को पकड़ना कठिन होता है।

दूसरी पद्धति: काल-विभाजन (Periodization) पद्धति। इसमें साहित्यिक विकास को चार या पाँच कालों में बाँटा जाता है। शुक्ल जी की **"हिन्दी साहित्य का**

इतिहास" (1929) इसी पद्धति पर आधारित है। उन्होंने वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल — चार काल खंड किए। इस पद्धति की सबसे बड़ी सीमा यह है कि **काल-सीमाएँ कृत्रिम** होती हैं — कोई रचनाकार एक काल की समाप्ति और दूसरे काल के आरंभ में एक साथ सक्रिय हो सकता है।

तीसरी पद्धति: विधा-केंद्रित (Genre-based) पद्धति। इसमें साहित्यिक विधाओं (काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध) के विकास को अलग-अलग खंडों में प्रस्तुत किया जाता है। **रामचंद्र तिवारी** और **नलिन विलोचन शर्मा** ने इस पद्धति का प्रयोग किया। इसका लाभ यह है कि प्रत्येक विधा के विकास-क्रम को विस्तार से समझा जा सकता है, किंतु **समग्र साहित्यिक चेतना** का चित्र खंडित हो जाता है।

चौथी पद्धति: सैद्धांतिक (Theoretical) पद्धति। इसमें किसी विशेष सिद्धांत (मार्क्सवाद, मनोविश्लेषण, संरचनावाद) के आलोक में साहित्यिक इतिहास की व्याख्या की जाती है। **रामविलास शर्मा** और **नामवर सिंह** इस पद्धति के प्रवर्तक हैं। यह पद्धति गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है, किंतु **सिद्धांत की पूर्व-धारणाएँ** कभी-कभी तथ्यों को विकृत कर सकती हैं।

इतिहास-लेखन की प्रमुख समस्याएँ (Major Problems in Historiography)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन के समक्ष अनेक समस्याएँ रही हैं, जिन्हें परीक्षार्थी को स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। ये समस्याएँ न केवल इतिहासकारों के लिए चुनौती हैं, बल्कि परीक्षा में **विश्लेषणात्मक प्रश्नों** का आधार भी हैं।

पहली समस्या: तिथि-निर्धारण की कठिनाई। अनेक प्राचीन रचनाओं की रचना-तिथि अनिश्चित है। उदाहरण के लिए, **चंदबरदाई** की **"पृथ्वीराज रासो"** की रचना-तिथि को लेकर विद्वानों में गहरा मतभेद है। कुछ इसे 1191 ई. के आसपास मानते हैं, तो कुछ इसे बहुत बाद की रचना। इसी प्रकार, **अमीर खुसरो** की हिन्दी रचनाओं की प्रामाणिकता पर भी संदेह किया जाता रहा है। यह अनिश्चितता इतिहास-लेखन की आधारभूत कठिनाई है।

दूसरी समस्या: पांडुलिपियों की उपलब्धता। अनेक रचनाएँ पांडुलिपि रूप में ही मिलती हैं, जिनमें **पाठ-भेद** (textual variations) पाए जाते हैं। विभिन्न पांडुलिपियों में एक ही कविता के कई संस्करण मिलते हैं। इतिहासकार को निर्णय करना पड़ता है कि कौन-सा पाठ मूल है। **संपादन-पद्धति** (textual criticism) का विकास इसी समस्या के समाधान के लिए हुआ।

तीसरी समस्या: क्षेत्रीय भाषाओं का प्रभाव। हिन्दी के अनेक रचनाकारों ने अपने क्षेत्र की बोलियों (अवधी, ब्रज, मैथिली, राजस्थानी) में रचनाएँ कीं। **तुलसीदास** की **"रामचरितमानस"** अवधी में है, तो **सूरदास** की रचनाएँ ब्रज में। इन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में शामिल करना है या नहीं — यह प्रश्न इतिहासकारों के सामने सदैव रहा है। **शुक्ल जी** ने इन्हें शामिल किया, किंतु कुछ विद्वानों ने इन्हें अलग भाषाओं का साहित्य माना।

चौथी समस्या: साहित्येतर स्रोतों की उपेक्षा। पारंपरिक इतिहास-लेखन ने मुख्यतः साहित्यिक ग्रंथों को ही स्रोत माना। किंतु **अभिलेख** (inscriptions), **सिक्के**, **यात्रा-वृत्तांत** और **लोक-साहित्य** जैसे स्रोतों की उपेक्षा की गई। आधुनिक इतिहासकार इन स्रोतों का उपयोग करके **वैकल्पिक इतिहास** (alternative history) लिखने का प्रयास कर रहे हैं।

इतिहास-लेखन में नारीवादी दृष्टिकोण (Feminist Perspective in Historiography)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन में **नारीवादी दृष्टिकोण** का उदय 1990 के दशक में हुआ। इस दृष्टिकोण ने पारंपरिक इतिहास-लेखन पर यह आरोप लगाया कि उसमें **महिला रचनाकारों** की उपेक्षा की गई है। पारंपरिक इतिहासों में केवल **मीराबाई** और **महादेवी वर्मा** जैसी कुछ चुनिंदा महिला कवयित्रियों को स्थान मिला, जबकि अनेक महिला रचनाकार विस्मृत कर दी गईं।

सुशीला टाकभौरे और **प्रभा खेतान** ने इस उपेक्षा को उजागर किया। उन्होंने तर्क दिया कि इतिहास-लेखन की **पितृसत्तात्मक मानसिकता** ने महिलाओं की रचनाओं को गंभीरता से नहीं लिया। उदाहरण के लिए, भक्तिकाल में **सहजोबाई, दयाबाई** और **झूलनाथ** जैसी महिला संत-कवयित्रियाँ थीं, जिन्हें पारंपरिक इतिहासों में केवल एक पंक्ति में उल्लेख किया गया। नारीवादी दृष्टिकोण ने इन रचनाओं का **पुनर्पाठ** (re-reading) करके उनके साहित्यिक मूल्य को स्थापित किया।

इस दृष्टिकोण की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि उसने **महिला अनुभवों** को साहित्यिक इतिहास का केंद्र बिंदु बनाया। पारंपरिक इतिहास-लेखन में प्रेम, भक्ति और वीरता जैसे विषयों को पुरुष-दृष्टि से देखा गया, जबकि नारीवादी दृष्टिकोण ने **स्त्री-स्वर** (female voice) को पहचाना। **मीरा** के पदों को केवल भक्ति-भावना का उदाहरण नहीं, बल्कि **पितृसत्ता के विरुद्ध विद्रोह** का दस्तावेज़ माना गया।

इतिहास-लेखन का भविष्य (Future of Historiography)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का भविष्य **बहुलतावादी** (pluralistic) होगा — यह एक ही दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि अनेक दृष्टिकोणों के समन्वय से लिखा जाएगा। **उत्तर-औपनिवेशिक** (postcolonial) और **उत्तर-आधुनिक** (postmodern) विमर्शों ने इतिहास-लेखन की एकरूपता को चुनौती दी है। अब इतिहासकार **स्थानीय** और **क्षेत्रीय** साहित्य को भी उतना ही महत्व दे रहे हैं जितना कि राष्ट्रीय स्तर के साहित्य को।

डिजिटल मानविकी (digital humanities) के विकास ने भी इतिहास-लेखन की संभावनाओं को बढ़ाया है। पांडुलिपियों के डिजिटलीकरण, पाठ-विश्लेषण के कंप्यूटर-आधारित उपकरणों और ऑनलाइन संग्रहों ने शोधकर्ताओं को नए अवसर दिए हैं। भविष्य में इतिहास-लेखन **अधिक समावेशी** (inclusive) होगा — जिसमें दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और LGBTQ+ रचनाकारों के योगदान को भी उचित स्थान मिलेगा।

इतिहास-लेखन का महत्व (Importance of Historiography)

हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का अध्ययन केवल परीक्षा की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि **साहित्यिक चेतना के विकास** को समझने के लिए भी आवश्यक है। यह हमें बताता है कि हिन्दी साहित्य ने किस प्रकार **अपभ्रंश से आधुनिक हिन्दी** तक की यात्रा तय की। इतिहास-लेखन हमें यह भी समझाता है कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि **समाज के दर्पण** के रूप में कार्य करता है।

इतिहास-लेखन का एक और महत्व यह है कि यह **साहित्यिक मूल्यांकन** के मानदंड स्थापित करता है। जब कोई इतिहासकार किसी रचना को **उत्कृष्ट** या **सामान्य** कहता है, तो वह कुछ मानदंडों के आधार पर निर्णय करता है। ये मानदंड (शैली, भाषा, विषय-वस्तु, रस-निष्पत्ति) साहित्यिक आलोचना की नींव बनते हैं। इस प्रकार, इतिहास-लेखन और आलोचना परस्पर जुड़े हुए हैं — इतिहास-लेखन अतीत का आलोचनात्मक मूल्यांकन है, और आलोचना वर्तमान का इतिहास-लेखन।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य का इतिहास-लेखन एक **गतिशील** (dynamic) और **बहुस्तरीय** (multi-layered) प्रक्रिया है। यह केवल तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि **व्याख्या और पुनर्व्याख्या** की सतत प्रक्रिया है। शिवसिंह सेंगर से लेकर नामवर सिंह तक, प्रत्येक इतिहासकार ने अपने समय की चेतना के अनुसार साहित्यिक अतीत को पुनर्परिभाषित किया। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास एक **खुला ग्रंथ** है, जिसमें नए शोध, नए दृष्टिकोण और नए प्रश्न सदैव जुड़ते रहते हैं। परीक्षार्थी को इन विविध दृष्टिकोणों को समझना चाहिए, क्योंकि परीक्षा में अक्सर **तुलनात्मक प्रश्न** पूछे जाते हैं — जैसे शुक्ल जी का दृष्टिकोण बनाम द्विवेदी जी का दृष्टिकोण, या पारंपरिक इतिहास-लेखन बनाम नारीवादी इतिहास-लेखन। इन अंतरों को स्पष्ट रूप से समझना ही इस विषय में सफलता की कुंजी है।

छायावादोत्तर कविता का इतिहास-लेखन: प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अंतर्संबंध

इतिहास-लेखन की दृष्टि से छायावादोत्तर काव्य-युग हिन्दी साहित्य के आलोचकों के लिए सदैव एक चुनौतीपूर्ण विषय रहा है। इस युग में एक ओर **प्रगतिवाद** (1936-1943) ने कविता को सामाजिक-आर्थिक चेतना से जोड़ा, तो दूसरी ओर **प्रयोगवाद** (1943-1950) ने कविता की भाषा और शिल्प को नया आयाम दिया। इन दोनों आंदोलनों के बीच का संबंध, उनका इतिहास-लेखन और उनकी वैचारिकी आज भी शोधार्थियों और परीक्षार्थियों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। यह खंड इन दोनों काव्य-धाराओं के ऐतिहासिक विकास, उनके प्रमुख कवियों, उनकी काव्य-भाषा और उनके अंतर्संबंधों की गहन जांच प्रस्तुत करता है।

प्रगतिवाद: सामाजिक चेतना का काव्य-आंदोलन

प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य का वह आंदोलन है जिसने कविता को व्यक्तिगत अनुभूति के घेरे से निकालकर सामाजिक-आर्थिक यथार्थ से जोड़ा। इसका उदय **1936** में प्रगतिशील लेखक संघ (PWA) की स्थापना के साथ हुआ। इसके प्रमुख सिद्धांतकार **सज्जाद ज़हीर**, **मुल्कराज आनंद** और **प्रेमचंद** थे। प्रेमचंद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट किया कि साहित्य का उद्देश्य "जीवन की सच्चाई" को उजागर करना है, न कि केवल मनोरंजन करना। इस आंदोलन की जड़ें **मार्क्सवादी विचारधारा** में हैं, जो वर्ग-संघर्ष, शोषण-मुक्ति और समानता पर बल देती है।

प्रगतिवादी कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं: वर्ग-चेतना, **शोषण-विरोध**, **वैज्ञानिक दृष्टिकोण**, **सामाजिक यथार्थ** और **जन-जीवन की अभिव्यक्ति**। इस काव्य-धारा के प्रमुख कवियों में **सुमित्रानंदन पंत** (युगवाणी, स्वर्णकिरण), **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'** (कुकुरमुत्ता, अनामिका), **शिवमंगल सिंह 'सुमन'**, **नागार्जुन**, **त्रिलोचन**, **केदारनाथ अग्रवाल** और **रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'** प्रमुख हैं। इन कवियों ने अपनी कविताओं में किसानों, मजदूरों और शोषित वर्गों की पीड़ा को स्वर दिया।

नागार्जुन की कविता "अकाल और उसके बाद" तथा "बादल को घिरते देखा है" में ग्रामीण शोषण और प्रकृति का मानवीय संबंध दोनों दिखाई देते हैं। उनकी भाषा में लोकजीवन की सहजता और मार्क्सवादी वर्ग-चेतना का अद्भुत समन्वय है। **त्रिलोचन** की "धरती" कविता में किसान की पीड़ा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। **केदारनाथ अग्रवाल** की "युग की गंगा" में भारतीय जनता के संघर्ष को गंगा के प्रवाह से जोड़कर एक नया प्रतीक-विधान रचा गया है।

प्रगतिवाद के इतिहास-लेखन में **डॉ. बच्चन सिंह** का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने आलोचनात्मक ग्रंथों में प्रगतिवादी कविता के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया है: प्रथम चरण (1936-1943) जिसमें वैचारिक उत्साह और आंदोलन की तीव्रता थी; द्वितीय चरण (1943-1950) जिसमें वैचारिक परिपक्वता और कलात्मक साधना का समन्वय हुआ; तृतीय चरण (1950 के बाद) जिसमें प्रगतिवादी कविता में आत्म-विश्लेषण और निराशा के स्वर उभरे। **नामवर सिंह** ने अपनी पुस्तक "कविता के नए प्रतिमान" में प्रगतिवादी कविता की सीमाओं को रेखांकित किया और उसे "यांत्रिक वर्ग-चेतना" का पर्याय बताया।

प्रयोगवाद: शिल्प और भाषा का नया प्रतिमान

प्रयोगवाद हिन्दी कविता का वह आंदोलन है जिसने कविता की भाषा, शिल्प और अभिव्यक्ति के नए प्रतिमान स्थापित किए। इसका प्रारंभ **1943** में **अज्ञेय** (सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन) द्वारा "तारसप्तक" के प्रकाशन से माना जाता है। "तारसप्तक" में सात कवियों — अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन और रामविलास शर्मा — की कविताएँ संकलित थीं। इस संकलन की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद का सैद्धांतिक प्रतिपादन किया।

प्रयोगवाद के मूल तत्व हैं: अनुभूति की प्रधानता, **व्यक्तिवादी दृष्टिकोण**, **भाषा का नवीन प्रयोग**, **प्रतीकों का सृजन** और **बिम्ब-विधान**। यह आंदोलन **अस्तित्ववादी दर्शन** से प्रभावित था, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, अकेलेपन और आत्म-अन्वेषण पर बल देता है। प्रयोगवादी कवियों ने कविता को सामाजिक दायित्व से मुक्त करके उसे "आत्माभिव्यक्ति का माध्यम" बनाया।

अज्ञेय की कविता "नदी के द्वीप" में व्यक्ति की अकेलेपन की अनुभूति को नदी के द्वीप के प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। उनकी कविता "हरी घास पर क्षण भर" में क्षणिक अनुभूति की गहराई और उसका विस्तार दिखाई देता है। प्रभाकर माचवे की कविताओं में नगर-जीवन की विडंबना और आधुनिकता की जटिलता दिखाई देती है।

प्रयोगवाद के इतिहास-लेखन में **डॉ. नगेन्द्र** और **डॉ. नामवर सिंह** के दृष्टिकोण भिन्न हैं। डॉ. नगेन्द्र ने प्रयोगवाद को "कविता की आत्म-खोज" माना और उसे सकारात्मक दृष्टि से देखा। उन्होंने अज्ञेय की कविता को "बौद्धिक कविता" की संज्ञा दी। दूसरी ओर, नामवर सिंह ने प्रयोगवाद को "मध्यवर्गीय व्यक्तिवाद" का पर्याय बताया और कहा कि यह आंदोलन सामाजिक यथार्थ से कटा हुआ है। **डॉ. रामविलास शर्मा** ने प्रयोगवाद को "प्रतिक्रियावादी आंदोलन" कहकर इसकी आलोचना की और प्रगतिवाद को ही सच्चा जनवादी आंदोलन माना।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद: तुलनात्मक विश्लेषण

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बीच का संबंध विरोध और संवाद दोनों का है। एक ओर ये दोनों आंदोलन एक-दूसरे के विरोधी प्रतीत होते हैं, तो दूसरी ओर इनमें कई समानताएँ भी हैं। दोनों ने छायावाद की अतिव्यक्तिवादी और रहस्यवादी प्रवृत्ति का विरोध किया। दोनों ने कविता को नया रूप देने का प्रयास किया।

आधार	प्रगतिवाद	प्रयोगवाद
प्रारंभ	1936, प्रगतिशील लेखक संघ से	1943, तारसप्तक से
दर्शन	मार्क्सवादी, वर्ग-संघर्ष	अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी
कविता का उद्देश्य	सामाजिक परिवर्तन, जन-जागरण	आत्माभिव्यक्ति, अनुभूति की गहराई
भाषा	सरल, जन-सुलभ, संवादात्मक	जटिल, प्रतीकात्मक, बौद्धिक
विषय-वस्तु	शोषण, वर्ग-संघर्ष, किसान-मजदूर	व्यक्ति की अकेलापन, आत्म-अन्वेषण
प्रमुख कवि	नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल	अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, माचवे
समालोचना	यांत्रिक वर्ग-चेतना (नामवर सिंह)	मध्यवर्गीय व्यक्तिवाद (नामवर सिंह)

इस तालिका से स्पष्ट है कि दोनों आंदोलनों की वैचारिकी, उद्देश्य और अभिव्यक्ति-शैली में मौलिक अंतर है। फिर भी, दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया। **प्रगतिवादी कवियों** ने प्रयोगवादी शिल्प-तकनीकों को अपनाया, जबकि **प्रयोगवादी कवियों** ने सामाजिक सरोकारों को पूरी तरह नकारा नहीं। **नागार्जुन** की कविता में प्रयोगवादी बिम्ब-विधान का प्रभाव दिखाई देता है, तो **अज्ञेय** की "असाध्य वीणा" में सामाजिक चिंता के स्वर भी मिलते हैं।

इतिहास-लेखन की समस्याएँ और विवाद

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के इतिहास-लेखन में कई समस्याएँ और विवाद हैं। पहली समस्या **काल-निर्धारण** की है। कुछ आलोचक प्रगतिवाद का प्रारंभ **1934** से मानते हैं, जब "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना की तैयारी शुरू हुई थी, जबकि अन्य इसे **1936** से मानते हैं। इसी प्रकार, प्रयोगवाद का प्रारंभ कुछ आलोचक **1943** (तारसप्तक) से और कुछ **1942** (अज्ञेय की "चिंता" कविता) से मानते हैं।

दूसरी समस्या **वर्गीकरण** की है। **रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'** को प्रगतिवादी और प्रयोगवादी दोनों श्रेणियों में रखा जाता है। उनकी कविता "धरती" में सामाजिक चेतना और प्रयोगवादी शिल्प दोनों हैं। इसी प्रकार, **सुमित्रानंदन पंत** की "युगवाणी" (1938) को प्रगतिवादी माना जाता है, लेकिन उनकी "स्वर्णकिरण" (1947) में प्रयोगवादी तत्व भी हैं। यह वर्गीकरण-समस्या इतिहास-लेखन को जटिल बनाती है।

तीसरी समस्या **मूल्यांकन** की है। **मार्क्सवादी आलोचक** (रामविलास शर्मा, शिवदान सिंह चौहान) प्रगतिवाद को श्रेष्ठ मानते हैं और प्रयोगवाद को "पूँजीवादी विचारधारा का साहित्यिक रूप" बताते हैं। दूसरी ओर, **अस्तित्ववादी आलोचक** (अज्ञेय, डॉ. नगेन्द्र) प्रयोगवाद को अधिक सर्जनात्मक मानते हैं। यह वैचारिक विभाजन इतिहास-लेखन को वस्तुनिष्ठ नहीं रहने देता।

नई कविता: संश्लेषण का प्रयास

नई कविता (1950 के बाद) प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों का संश्लेषण है। इसने प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना और प्रयोगवाद की शिल्प-साधना दोनों को अपनाया। **अज्ञेय** का "दूसरा सप्तक" (1951) और "तीसरा सप्तक" (1959) नई कविता के महत्वपूर्ण संकलन हैं। इनमें **धर्मवीर भारती**, **कुंवर नारायण**, **शमशेर बहादुर सिंह**, **रघुवीर सहाय** जैसे कवि शामिल थे।

धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" (1959) में राधा के माध्यम से प्रेम, विरह और आधुनिक जीवन की जटिलताओं को प्रस्तुत किया गया है। **कुंवर नारायण** की "आत्मजयी" में अस्तित्ववादी चिंतन और सामाजिक यथार्थ का समन्वय है। **रघुवीर सहाय** की कविताओं में शहरी जीवन की विडंबना और राजनीतिक चेतना दोनों हैं। **शमशेर बहादुर सिंह** की कविता में प्रेम और सौंदर्य के साथ सामाजिक सरोकार भी हैं।

नई कविता के इतिहास-लेखन में **डॉ. नामवर सिंह** की पुस्तक "कविता के नए प्रतिमान" (1968) सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसमें उन्होंने नई कविता को "जनवादी कविता" की संज्ञा दी और उसे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों का उत्तराधिकारी बताया। **डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी** ने अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में नई कविता को "आधुनिकता का साहित्यिक रूप" माना।

साहित्येतिहास-लेखन की पद्धतियाँ

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के इतिहास-लेखन में विभिन्न पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। पहली पद्धति **ऐतिहासिक-कालानुक्रमिक** है, जिसमें घटनाओं और आंदोलनों को काल-क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। **डॉ. नगेन्द्र** की "हिन्दी साहित्य का इतिहास" इसी पद्धति पर आधारित है। दूसरी पद्धति **वैचारिक-विश्लेषणात्मक** है, जिसमें साहित्यिक आंदोलनों को वैचारिक दृष्टि से विश्लेषित किया जाता है। **रामविलास शर्मा** की "हिन्दी साहित्य का इतिहास" इसी पद्धति का उदाहरण है। तीसरी पद्धति **समाजशास्त्रीय** है, जिसमें साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में देखा जाता है। **डॉ. नामवर सिंह** की पुस्तकें इसी पद्धति का अनुसरण करती हैं।

इन पद्धतियों में से प्रत्येक की अपनी सीमाएँ हैं। ऐतिहासिक-कालानुक्रमिक पद्धति में साहित्यिक मूल्यांकन का अभाव होता है। वैचारिक-विश्लेषणात्मक पद्धति में वैचारिक पूर्वाग्रह हावी हो जाता है। समाजशास्त्रीय पद्धति में साहित्य के कलात्मक पक्ष की उपेक्षा होती है। इसलिए, समकालीन आलोचक **संश्लेषित पद्धति** पर बल देते हैं, जिसमें इन तीनों पद्धतियों का समन्वय होता है।

प्रमुख कवियों का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के प्रमुख कवियों का तुलनात्मक विश्लेषण इतिहास-लेखन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। **नागार्जुन** और **अज्ञेय** की तुलना इस संदर्भ में विशेष रूप से की जाती है। नागार्जुन की कविता जन-जीवन से जुड़ी है, जबकि अज्ञेय की कविता व्यक्ति की आंतरिक दुनिया से। नागार्जुन की भाषा सरल और सहज है, जबकि अज्ञेय की भाषा जटिल और बौद्धिक है।

त्रिलोचन और **गिरिजाकुमार माथुर** की तुलना भी महत्वपूर्ण है। त्रिलोचन की "धरती" में ग्रामीण जीवन का यथार्थ है, जबकि माथुर की "धूप के धान" में नगरीय

जीवन की जटिलता। त्रिलोचन की भाषा में लोकगीतों की सहजता है, जबकि माथुर की भाषा में शास्त्रीयता।

केदारनाथ अग्रवाल और **प्रभाकर माचवे** की तुलना में दोनों के बीच भिन्नता स्पष्ट होती है। अग्रवाल की कविता में सामाजिक चेतना और प्रकृति-प्रेम दोनों हैं, जबकि माचवे की कविता में नगर-जीवन की विडंबना और अकेलापन। अग्रवाल की "युग की गंगा" में आशावाद है, जबकि माचवे की कविताओं में निराशा।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की प्रासंगिकता आज के समय में भी बनी हुई है। समकालीन कविता में **दलित चेतना**, **स्त्री-विमर्श** और **पर्यावरण-चिंता** जैसे विषय प्रगतिवादी चेतना के ही विस्तार हैं। **ओमप्रकाश वाल्मीकि** और **चंद्रकांता** की कविताओं में वर्ग-शोषण और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रगतिवादी स्वर हैं। दूसरी ओर, **अरुण कमल** और **विनोद कुमार शुक्ल** की कविताओं में प्रयोगवादी शिल्प और अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव दिखाई देता है।

2023-2025 के समकालीन काव्य-परिदृश्य में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की विरासत को नई पीढ़ी के कवि आत्मसात कर रहे हैं। **डिजिटल माध्यमों** पर कविता के नए प्रयोग, **सोशल मीडिया कविता** और **मौखिक काव्य-परंपरा** का पुनरुत्थान — ये सभी प्रयोगवादी भावना के ही विस्तार हैं। साथ ही, **जलवायु परिवर्तन**, **महामारी** और **युद्ध** जैसे वैश्विक संकटों ने कविता को फिर से सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है, जो प्रगतिवादी चेतना की प्रासंगिकता को सिद्ध करता है।

इतिहास-लेखन में भविष्य की संभावनाएँ

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के इतिहास-लेखन में भविष्य की कई संभावनाएँ हैं। पहली संभावना **तुलनात्मक अध्ययन** की है, जिसमें हिन्दी, उर्दू, बांग्ला और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रगतिवादी और प्रयोगवादी आंदोलनों की तुलना की जा सकती है। दूसरी संभावना **अनुवाद-अध्ययन** की है, जिसमें इन आंदोलनों के कवियों के अनुवादों का विश्लेषण किया जा सकता है। तीसरी संभावना **डिजिटल मानविकी** की है, जिसमें कंप्यूटर-आधारित विश्लेषण से काव्य-भाषा की बारीकियों को समझा जा सकता है।

इसके अलावा, **नारीवादी आलोचना** की दृष्टि से प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता का पुनर्मूल्यांकन किया जा सकता है। **महादेवी वर्मा** की कविता को प्रगतिवादी और प्रयोगवादी दोनों आंदोलनों के संदर्भ में देखा जा सकता है। इसी प्रकार, **उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना** की दृष्टि से इन आंदोलनों की वैचारिकी का पुनर्विश्लेषण किया जा सकता है।

परीक्षा-उपयोगी सारांश

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बीच का संबंध हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन का सबसे जटिल और विवादास्पद विषय है। इस संबंध को समझने के लिए निम्नलिखित बिंदु महत्वपूर्ण हैं:

- **प्रगतिवाद** (1936) सामाजिक-आर्थिक यथार्थ पर आधारित है, जबकि **प्रयोगवाद** (1943) व्यक्ति की आंतरिक अनुभूति पर।
- दोनों आंदोलनों ने **छायावाद** का विरोध किया, लेकिन भिन्न दृष्टिकोण से।
- **नागार्जुन**, **त्रिलोचन**, **केदारनाथ अग्रवाल** प्रगतिवाद के प्रमुख कवि हैं, जबकि **अज्ञेय**, **गिरिजाकुमार माथुर**, **प्रभाकर माचवे** प्रयोगवाद के।
- **नई कविता** (1950 के बाद) दोनों आंदोलनों का संश्लेषण है।
- इतिहास-लेखन में **काल-निर्धारण**, **वर्गीकरण** और **मूल्यांकन** की समस्याएँ हैं।
- **नामवर सिंह**, **रामविलास शर्मा**, **डॉ. नगेन्द्र** के दृष्टिकोण भिन्न हैं।

निष्कर्ष

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद हिन्दी कविता के दो महत्वपूर्ण आंदोलन हैं, जिन्होंने कविता को नया आयाम दिया। इनके बीच का संबंध विरोध और संवाद दोनों का है। इतिहास-लेखन की दृष्टि से इन दोनों आंदोलनों का अध्ययन हिन्दी साहित्य के विकास को समझने के लिए अनिवार्य है। समकालीन कविता में इन दोनों आंदोलनों की विरासत जीवित है, और भविष्य में भी यह विरासत कविता को प्रभावित करती रहेगी।

आधुनिक हिन्दी आलोचना की परम्परा: भारतेंदु से अस्मितावादी विमर्श तक

हिन्दी आलोचना का विकास हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन से अभिन्न रूप से जुड़ा है। जिस प्रकार इतिहास-लेखन साहित्यिक प्रवृत्तियों को कालक्रम और सिद्धांत के आधार पर व्यवस्थित करता है, उसी प्रकार आलोचना साहित्यिक कृतियों के मूल्यांकन और विश्लेषण का शास्त्र है। यह खंड हिन्दी आलोचना की उस यात्रा का मानचित्र प्रस्तुत करता है जो **भारतेंदु हरिश्चंद्र** के निबंधों से आरंभ होकर **नामवर सिंह** के वैचारिक आलोचना-सूत्रों और **अस्मितावादी विमर्शों** तक पहुँचती है — यह विषय UPTGT में इतिहास-लेखन के साथ सतत पूछा जाता रहा है।

आलोचना-शास्त्र की अवधारणा और हिन्दी में उसका आरंभ

आलोचना शब्द संस्कृत के 'आ + लुच्' (लोचन) धातु से बना है, जिसका अर्थ है — 'विवेचन करना', 'छानना', 'परखना'। सरल शब्दों में, आलोचना साहित्यिक कृति की सार्थकता, सौंदर्य और सत्य की परीक्षा है। पाश्चात्य परंपरा में अरस्तू (Aristotle) की 'पोएटिक्स' (Poetics) को आलोचना-शास्त्र का प्रथम ग्रंथ माना जाता है, जबकि भारतीय परंपरा में भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' इसका आधार-ग्रंथ है। हिन्दी में आलोचना का आरंभ भारतेंदु युग (1868–1893) से माना जाता है, जब पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक विवेचना का सार्वजनिक मंच बना।

हिन्दी आलोचना के विकास को समझने के लिए उसके चार प्रमुख सोपानों को जानना आवश्यक है — **संस्कृत काव्यशास्त्र की विरासत**, **पाश्चात्य आलोचना-सिद्धांतों का अनुवाद और अनुकूलन**, **राष्ट्रीय जागरण की चेतना** और **आधुनिक विमर्शों का प्रवेश**। इन चारों धाराओं के संगम से हिन्दी आलोचना का जो रूप विकसित हुआ, वह विश्व की किसी भी भाषा की आलोचना-परंपरा से कम समृद्ध नहीं है।

भारतेंदु युग: आलोचना का शैशवकाल

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1885) हिन्दी आलोचना के प्रथम हस्ताक्षर हैं। उन्होंने 'कविवचन सुधा' (1868), 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1873) और 'बालबोधिनी' (1874)

पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्यिक विवेचना का सूत्रपात किया। उनकी आलोचना का मुख्य आधार **राष्ट्रीय पुनर्जागरण** था — वे साहित्य को समाज सुधार और राष्ट्र-निर्माण का माध्यम मानते थे। उनका प्रसिद्ध कथन है — "कविता केवल कला नहीं, जीवन की आवश्यकता है।" उन्होंने 'निबंधमाला' (1876) में हिन्दी भाषा और साहित्य की दशा पर विचार प्रस्तुत किया।

भारतेंदु युग की आलोचना की विशेषताएँ:

- **भाषा-चिंता**: हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की चिंता, जिसमें ब्रज और खड़ी बोली की श्रेष्ठता का विवाद शामिल था
- **राष्ट्रीय चेतना**: साहित्य को स्वतंत्रता संग्राम से जोड़ना, जैसे 'भारत दुर्दशा' नाटक में सामाजिक विद्रूपता का चित्रण
- **पाश्चात्य ज्ञान का स्वागत**: अंग्रेजी साहित्य और विचारों से परिचय कराना
- **निबंध-शैली का विकास**: गद्य में विचार-विमर्श की नई शैली का प्रवर्तन

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण आलोचकों में **प्रतापनारायण मिश्र** और **बालकृष्ण भट्ट** उल्लेखनीय हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका के माध्यम से व्यंग्य-प्रधान आलोचना की, जबकि बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' में गंभीर साहित्यिक विवेचना का मार्ग प्रशस्त किया। इनकी आलोचना में **संस्कृत काव्यशास्त्र** का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है — रस, अलंकार और ध्वनि जैसे सिद्धांतों का प्रयोग समकालीन कविता के मूल्यांकन में होता था।

द्विवेदी युग: आलोचना का वैज्ञानिक आधार

महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864–1938) के संपादन काल (1903–1920) में 'सरस्वती' पत्रिका हिन्दी आलोचना का प्रमुख केंद्र बनी। द्विवेदी जी ने आलोचना को **व्यक्तिगत रुचि से ऊपर उठाकर वस्तुनिष्ठ मानदंड** प्रदान किए। उनके अनुसार आलोचना का कार्य केवल प्रशंसा या निंदा नहीं, बल्कि साहित्यिक कृति के **गुण-दोषों का वैज्ञानिक विश्लेषण** है।

द्विवेदी युग की आलोचना की मुख्य विशेषताएँ:

- **भाषा-शुद्धता पर बल**: संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली को मानक भाषा के रूप में स्थापित करना
- **अनुशासन और नियम**: काव्य में नियमबद्धता, छंद-विधान और व्याकरण की शुद्धता पर जोर
- **सामाजिक उपयोगिता**: साहित्य को समाज-सुधार का माध्यम मानना
- **नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा**: साहित्य में आदर्शवाद और नैतिकता को प्रमुखता देना

इस युग में **पद्मसिंह शर्मा**, **लाला भगवानदीन** और **बाबू श्यामसुंदर दास** ने आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्यामसुंदर दास ने 'हिन्दी भाषा और साहित्य' (1930) जैसे ग्रंथों के माध्यम से हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की नींव रखी। उनका मानना था कि आलोचना के लिए **साहित्यिक इतिहास का ज्ञान** अनिवार्य है — यही विचार आगे चलकर इतिहास-लेखन और आलोचना के अंतर्संबंध का आधार बना।

रामचंद्र शुक्ल: हिन्दी आलोचना का शिखर

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) हिन्दी आलोचना के सर्वोच्च शिखर हैं। उनका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929) और 'रस मीमांसा' (1949) हिन्दी आलोचना के आधार-स्तंभ हैं। शुक्ल जी ने आलोचना को **मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि** प्रदान की। उनका प्रसिद्ध सिद्धांत है — "साहित्य का संबंध हृदय से है, बुद्धि से नहीं।" उन्होंने **रस** को काव्य की आत्मा माना और 'रस मीमांसा' में रस-सिद्धांत का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया।

शुक्ल जी की आलोचना के प्रमुख आयाम:

- **हृदय-दृष्टि**: काव्य को हृदय की वस्तु मानना, बुद्धि-प्रधान आलोचना का विरोध
- **लोक-मंगल की कसौटी**: साहित्य का उद्देश्य लोक-मंगल होना चाहिए
- **ऐतिहासिक अनुशीलन**: कृति को उसके काल-संदर्भ में देखना
- **भाषा-सौंदर्य**: साहित्यिक भाषा की स्पष्टता और स्वाभाविकता पर बल

शुक्ल जी ने 'काव्य में रहस्यवाद' (1929) नामक निबंध में छायावादी कविता की समीक्षा की। उन्होंने **रहस्यवाद** को जीवन से पलायन माना और तर्क दिया कि काव्य का आधार **लोक-जीवन** होना चाहिए। यह विवाद हिन्दी आलोचना के इतिहास में 'शुक्ल-विवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। उनके अनुसार, "जो काव्य लोक-मंगल से जुड़ा नहीं, वह केवल कलाविलास है।"

शुक्ल जी के समकालीन आलोचकों में **नंददुलारे वाजपेयी** और **हजारी प्रसाद द्विवेदी** का विशेष स्थान है। वाजपेयी जी ने 'हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी' (1942) में आधुनिक कविता की समीक्षा की, जबकि द्विवेदी जी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (1940) में साहित्य को **लोक-संस्कृति** से जोड़ा। द्विवेदी जी की आलोचना में **इतिहास-दृष्टि और संस्कृति-चेतना** का अद्भुत समन्वय है।

नामवर सिंह: वैचारिक आलोचना का नया प्रतिमान

नामवर सिंह (1926–2019) हिन्दी आलोचना के उस चरण के प्रतिनिधि हैं, जिसमें आलोचना को **विचारधारा** से जोड़ा गया। उनकी 'कविता के नए प्रतिमान' (1968) और 'दूसरी परंपरा की खोज' (1982) हिन्दी आलोचना के ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। नामवर जी ने **मार्क्सवादी दृष्टि** को हिन्दी आलोचना में प्रतिष्ठित किया। उनका प्रसिद्ध सिद्धांत है — "आलोचना का आधार इतिहास-चेतना है, न कि व्यक्तिगत रुचि।"

नामवर जी की आलोचना के प्रमुख आयाम:

- **इतिहास-चेतना**: कृति को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में देखना
- **विचारधारा का प्राथमिकता**: साहित्य को वर्ग-संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन से जोड़ना
- **परंपरा की पुनर्व्याख्या**: 'दूसरी परंपरा' की अवधारणा — लोक और जन-संस्कृति की परंपरा
- **छायावाद की पुनर्स्थापना**: शुक्ल जी की रहस्यवाद-आलोचना का प्रतिवाद

नामवर जी ने 'छायावाद' (1955) नामक अपनी शोध-पुस्तक में छायावाद को आधुनिक हिन्दी कविता का स्वर्णयुग घोषित किया। उन्होंने शुक्ल जी के रहस्यवाद-विरोध का उत्तर देते हुए तर्क दिया कि छायावाद **व्यक्ति की स्वतंत्रता और आधुनिक चेतना** का काव्य है। यह 'शुक्ल-नामवर विवाद' हिन्दी आलोचना के इतिहास में

सबसे चर्चित बहस है।

नामवर जी के समकालीन आलोचकों में **रामविलास शर्मा** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। शर्मा जी ने 'भारतेंदु युग' (1943) और 'निराला की साहित्य साधना' (1969) जैसे ग्रंथों में **मार्क्सवादी इतिहास-दृष्टि** को स्थापित किया। उनका मानना था कि साहित्यिक इतिहास को **सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों** के संदर्भ में लिखा जाना चाहिए। रामविलास शर्मा और नामवर सिंह के बीच विधि-पद्धति को लेकर मतभेद भी हिन्दी आलोचना की एक रोचक घटना है।

हिन्दी आलोचना में प्रमुख विमर्श और बहसें

हिन्दी आलोचना का इतिहास विमर्शों और बहसों से भरा पड़ा है। ये बहसें केवल व्यक्तिगत मतभेद नहीं, बल्कि साहित्यिक सिद्धांतों के गंभीर टकराव हैं। इन्हें समझना परीक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन्हीं से आलोचना के विभिन्न स्कूलों की पहचान होती है।

छायावाद-विवाद: शुक्ल जी ने छायावाद को जीवन-विमुख माना, जबकि नामवर सिंह ने उसे आधुनिक चेतना का काव्य घोषित किया। यह विवाद हिन्दी आलोचना का सबसे लंबा और गहरा विवाद है।

प्रगतिवाद-प्रयोगवाद विवाद: प्रगतिवादी आलोचकों ने प्रयोगवाद को जन-विमुख माना, जबकि प्रयोगवादी आलोचकों ने प्रगतिवाद को कलात्मक दृष्टि से दुर्बल बताया। इस विवाद में **शिवदान सिंह चौहान** और **अज्ञेय** प्रमुख पक्षकार थे।

नई कविता विवाद: 1950 के दशक में 'नई कविता' की अवधारणा को लेकर व्यापक बहस हुई। **धर्मवीर भारती** और **जगदीश चंद्र** ने नई कविता के पक्ष में लेख लिखे, जबकि पारंपरिक आलोचकों ने उसे पाश्चात्य प्रभाव माना।

अस्मितावादी विमर्श: 1990 के दशक से दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्शों ने हिन्दी आलोचना में प्रवेश किया। शरणकुमार लिंबाले की 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' और सुधा सिंह की स्त्री-विमर्शी आलोचना ने पारंपरिक आलोचना की मान्यताओं को चुनौती दी।

आलोचना के स्कूल और उनके सिद्धांत

हिन्दी आलोचना में कई विचारधाराएँ और स्कूल विकसित हुए हैं। इनकी तुलनात्मक समझ परीक्षा में अक्सर पूछी जाती है। निम्न तालिका में प्रमुख स्कूलों की तुलना प्रस्तुत है:

स्कूल	प्रमुख आलोचक	मुख्य सिद्धांत	विशेषता
संस्कृत काव्यशास्त्रीय	शुक्ल, वाजपेयी	रस, अलंकार, ध्वनि	भारतीय परंपरा का अनुसरण
मार्क्सवादी	रामविलास शर्मा, नामवर सिंह	वर्ग-संघर्ष, इतिहास-चेतना	सामाजिक परिवर्तन पर बल
प्रयोगवादी	अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल	व्यक्ति-स्वातंत्र्य, कला-प्रधानता	रूप-शिल्प पर जोर
मनोविश्लेषणवादी	श्रीराम शर्मा	अचेतन, काम-वासना	मनोवैज्ञानिक विश्लेषण
अस्मितावादी	धर्मवीर, सुधा सिंह	दलित, स्त्री, आदिवासी चेतना	हाशिये के समाज का प्रतिनिधित्व

आलोचना और इतिहास-लेखन का अंतर्संबंध

हिन्दी आलोचना और इतिहास-लेखन का संबंध परस्पर पूरक है। जहाँ इतिहास-लेखन साहित्यिक प्रवृत्तियों का कालक्रम प्रस्तुत करता है, वहीं आलोचना उन प्रवृत्तियों के मूल्यांकन का मानदंड प्रदान करती है। **श्यामसुंदर दास** का 'हिन्दी भाषा और साहित्य' (1930) दोनों का संगम है। इसी प्रकार **रामचंद्र शुक्ल** का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929) केवल इतिहास नहीं, बल्कि आलोचनात्मक इतिहास है — जिसमें प्रत्येक युग और कवि का मूल्यांकन शुक्ल जी के आलोचना-सिद्धांतों के आधार पर किया गया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (1940) में इतिहास-लेखन को **संस्कृति-अध्ययन** से जोड़ा गया। द्विवेदी जी का मानना था कि साहित्यिक इतिहास केवल रचनाओं की सूची नहीं, बल्कि **समाज की आत्मा का दर्पण** है। उन्होंने सिद्ध किया कि हिन्दी साहित्य की जड़ें **लोक-संस्कृति** में हैं, न कि केवल संस्कृत परंपरा में।

रामविलास शर्मा ने इतिहास-लेखन को **सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण** से जोड़ा। उनकी 'भारतेंदु युग' (1943) में भारतेंदु के साहित्य को उस समय के सामाजिक-आर्थिक संघर्षों के संदर्भ में देखा गया। शर्मा जी के अनुसार, "साहित्यिक इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।"

नामवर सिंह ने 'इतिहास और आलोचना' (1957) नामक पुस्तक में दोनों के अंतर्संबंध को स्पष्ट किया। उनके अनुसार, "आलोचना के बिना इतिहास अधूरा है, और इतिहास के बिना आलोचना निराधार।" यही दृष्टि आगे चलकर **नई आलोचना** के सिद्धांत का आधार बनी।

आधुनिक हिन्दी आलोचना के प्रमुख आलोचक

हिन्दी आलोचना के विकास में अनेक आलोचकों का योगदान रहा है। इनमें से कुछ का विस्तृत परिचय आवश्यक है, क्योंकि परीक्षा में इनके सिद्धांत और कृतियाँ बार-बार पूछी जाती हैं।

मैनेजर पांडेय (1941–2022) ने 'साहित्य और इतिहास-दृष्टि' (1981) में इतिहास-लेखन की पद्धति पर गंभीर विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने **वस्तुनिष्ठता और सापेक्षता** के द्वंद्व को स्पष्ट किया।

बच्चन सिंह (1919–2008) ने 'समकालीन हिन्दी कविता: परिदृश्य और परिप्रेक्ष्य' (1984) में नई कविता का विश्लेषण किया। उनकी आलोचना में **संरचनावादी दृष्टि** का प्रभाव दिखाई देता है।

गोपाल राय (1924–2016) ने 'हिन्दी उपन्यास: एक अध्ययन' (1957) में उपन्यास-विधा की आलोचना का आधार तैयार किया। उन्होंने **यथार्थवाद** को उपन्यास की मूल आत्मा माना।